Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 25-03-2023, Accepted: 10-04-2023, Published: 25-04-2023
Volume 4, Issue 1, 2023, Page No. 8-11

साठोत्तरी हिन्दी काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. बबीता तंवर
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, महम (रोहतक), हरियाणा, भारत

सारांश
साहित्य और समाज का अटूट संबंध माना जाता है। साठोत्तरी हिंदी कविता इस इस भाव सत्य से अलग नहीं है। इसमें समाज के ताने–बाने, सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों तथा विद्रूपता का जीवंत चित्रण हमें देखने को मिलता है। इसमे एक तरफ जहां आर्थिक शोषण करने वाले वर्ग के लोगों का विरोध किया है वही दूसरी तरफ किसान जैसे सामान्य व्यक्ति के प्रति संवेदना का भाव भी देखने को मिलता है। आज भौतिकवादी समाज में व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है जिससे उसे अनेक पारिवारिक सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है संबंध विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो गई है, जो समाज के लिए घातक है। साठोत्तरी कवि ने इसी समस्या को पहचान कर उसे अपना वरेण्य विषय बनाया।साठोत्तरी कविता व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं को अपने कलेवर में समाहित किए हुए हैं जो समाज को सही दिशा और दशा प्रदान करती है ताकि समाज मे लोगों का जीवन के स्तर को ऊंचा हो सके। साठोत्तरी कवि समाज में विभिन्न प्रसंग और संदर्भो के माध्यम से सामाजिक चेतना लाने के पक्षधर हैं। विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन करने के पीछे इनका प्रयोजन यही है कि लोगों का जीवन स्तर ऊंचा हो सके, साथ ही सामाजिक सौहार्द और भाईचारा बना रहे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी हिंदी कविता मे सामाजिक चेतना अनेक रूपों में व्यक्त हुई है।

मूल शब्दः सामाजिक चेतना, युग–परिवेष, रचनाकार का संबंध, लोगों का जीवन स्तर

किसी भी युग–परिवेष और रचनाकार का संबंध अविच्छिन्न होता है। वह समाज में जो कुछ घटित हो रहा है, उसका सजगता और संवेदनषीलता से अवलोकन करता है, रचनाकार की यही संवेदनषीलता उसके अर्न्तमन को झकझोर कर उसे सृजनात्मकता की ओर उन्मुख करती है। भावों का यही उद्वेलन उसे सृजनषील बनाता है, जो चेतना की अन्तिम परिणति है।''चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है।''[1] इस प्रकार 'चेतना मनुष्य के मनस्थल पर भौतिक जगत् के क्रिया–कलापों, विभिन्न प्रसंगों, परिस्थितियों एवं घटनाओं का प्रभाव पड़ने पर ही उद्बुद्ध होती है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न मानसिक क्रियाऐं जन्म लेती हैं।''[2] एक अन्य स्थान पर चेतना के संदर्भ में कहा है कि ''बोध, भाव और कर्म की समन्वित राषि चेतना है। चिन्तन, अनुभूति और कर्म की प्रक्रिया, इनका प्रसार और विकास ही चेतना है।''[3] अतः चेतना ही व्यक्ति को ज्ञान बुद्धि, होष–हवास और सजगता प्रदान करती है, जो एक तरफ कवि को कवि–कर्म करने के लिए प्रेरित करती है वहीं दूसरी तरफ साहित्य और समाज को एक वैचारिक आधार प्रदान करती है। इस प्रकार काव्य आत्मबोध एवं युग बोध से गुजरता हुआ सामाजिक अनुभूतियों को अपने कलेवर में समेट कर मानव जीवन को दिषा देने का कार्य करता है।

काव्य को सामाजिक भावनाओं का प्रतिबिम्ब कहा जाये तो इसमें कोई अतिषयोक्ति नहीं होगी क्योंकि साठोत्तरी कविता का अपना चिन्तन है, अपना वैचारिक स्तर है जो अनुभूतिगम्य है। वह अपनी चेतना की पोषक है, जो मानव और मानवता की भाव भूमि को लेकर चलती है तथा समाजवाद उसका मूलाधार है। इस प्रकार यह कविता सामाजिक यथार्थ को अपने कलेवर में समेट कर जनजीवन का सजीवांकन करती है तथा समाज–कल्याण के लिए नये मूल्यों की स्थापना करती है।

अतः इसमें सामाजिकता की भावभूमि देखी जा सकती है। इसमें 'मैं' वैयक्तिक नहीं है, वह सामाजिक है। साठोत्तरी कविता यथार्थ की भावभूमि पर आधारित है। मानव–मूल्यों की पोषिका है। जनहित इसका उद्देष्य है। यह दीन–हीन, बेकार, असहाय, दरिद्र तथा भयभासित एवं त्रस्त लोगों का मार्गदर्षन करती है तथा अमीर वर्ग जो सुखसाधक है, उसके द्वारा प्रस्थापित व्यवस्था का विरोध करती है। साठोत्तरी कवि किसान के चेहरे को पूँजीपति के चेहरे से मिलाने के लिए कटिबद्ध है–

'गाँव का बैल हाँकने वाले चेहरा
फसल की पूँजी बनाने वाले से मिलाना है।''[4]

साठोत्तरी कविता तत्कालीन समाज का संजीवांकन करती है। समाज में रहते हुए मनुष्य को अनेक बौद्धिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आ गया है, केवल यही नहीं वह नितांत भौतिकवादी भी हो चुका है। जिससे वह कुण्ठा, संत्रास, घुटन, तनाव, छटपटाहट का षिकार हो चुका है। नितान्त भौतिकता और अनेक स्वतंत्रता विषयक समकालीन ज्वलंत विषयों ने मानव जीवन को अनायास की ओर धकेल दिया है। सुदामा पाण्डेय धूमिल जी 'बीस साल बाद' नामक कविता में कहते हैं–

आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।''[5]

समाज में चारों तरफ संषय का वातावरण दिखाई दे रहा है। मनुष्य में कभी जीवन के प्रति ऊब दिखाई देती है तो कभी नफरत। साठोत्तरी कवि की इस प्रभाव से अछूता नहीं है, वह भी घोर निराषावादी ओर अवसाद में दिखाई देता है, उसकी ठिठकन भी दृष्टव्य है–

उन्नत भीड़ के रेल पेल से
पीछे छूटकर
अपने हाथों में थमाये झण्डों को चुपचाप
किनारे रखकर
अपनी झोली में बचे सपनों और प्रेम को
टटोलते हुए
किसी सड़क किनारे की बेच पर बैठकर
सुस्तानें या पीछे हटने का नहीं
ठिठकने का समय है।''[6]

केवल यही नहीं आज मानवीय रिष्ते टूटन और घुटन के षिकार हैं। उनमें मानवीयता का नितान्त अभाव दिखाई देता है। पारस्परिक सौहार्द भाव न पारस्परिक रिष्तोां में बचा है और न कही घर–परिवार और समाज में।यथा–

बाजार संस्कृति में टोका–टोकी नहीं होती
आत्मग्लानि भी नहीं
कोई नहीं पूछता
जो यहाँ रहते थे
वे कहाँ गये ?''[7]

आज समाज में संवेदना लुप्त प्राय सी दिखाई देती है। व्यक्ति वासना प्रषस्ति हो चला है। यहाँ भोगवाद सर्वोपरि हो गया है। इसी भाव सत्य की अभिव्यक्ति साठोत्तरी कवि इस प्रकार करता है–

''जो लुटाया जाता है यहाँ
वहाँ से आधा लूटकर ?
निर्वस्त्र होती जिस स्त्री का लोलुपता से
देखा जा रहा नाच।''[8]

भारतीय समाज में नारी जहाँ पूजनीय रही है वही आज उसका रूप परिवर्तित हो गया है। रघुवीर सहाय नारी की दषा के संदर्भ में कहते हैं–

''नारी बिचारी
पुरूष की मारी
तन से क्षुधित
मन से मुदित
लपक झपकर
अन्त में चित।''[9]

साठोत्तरी कवि व्यक्ति और समाज के अस्तित्व और अस्मिता को लेकर व्याकुल है तो कभी स्वयं के लिए। कभी वह अपने घर परिवार का लेकर चिंतित है तो कभी साधारण व्यक्ति के लिए। समाज में तनाव से ग्रस्त व्यक्ति की मनोदषा का चित्रण कवि इस प्रकार करता है–

''बम–बम उभरता है
एक डर/परिवार को छोड़ेगें
घर के भरोसे
लेकिन किसके भरोसे पर छोड़ेगे घर।''[10]

समाज में आत्मीयता केवल दिखावा है। साठोत्तरी कवि इस सामाजिक यथार्थ को जन–मन तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास करता है क्योंकि परम्परागत सामाजिक मूल्य वर्तमान परिवेष में मृतप्राय हो गये हैं, अब वह नये मानवीय मूल्यों की तलाष कर रहा है। समाज की वस्तु स्थिति का जीवन्त चित्रण कवि इस प्रकार करता है–

'' मगर उनकी नीयत पर कोई शक नहीं कर सकता
उसके माथे पर लात देकर वे बहुत ऊँचा उठ गये हैं।
वे सब सचमुच बहुत बड़े लोग हैं
धर्म, ईमान, नैतिकता
सामाजिक दायित्व आदि उन्हीं पर टिके हैं।''[11]

आज सामाजिक ही नहीं अपितु पारिवारिक संबंधों और मूल्यों का विघटन हो चुका है। आज समाज में परिवर्तन का दौर है। इस परिवर्तन की भाव भूमि तथा नये चिन्तन बोध को साठोत्तर कवि जनमानस तक पहुँचाने को प्रतिबद्ध दिखाई देता है। केवल यही नहीं कुत्सा, अपमान, अवज्ञा और उत्पीड़न को परिवद्धित होता देखकर कवि कराहने लगता है। ऐसी स्थिति में वह व्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार करता दिखाई देता है। यथा–
और जब कोई बड़ा आदमी कहीं भाषण करने लगता है
लगता है

कोई बेसवा शरीफों का मुहल्ले में निकल आयी है
और नुक्कड़ पर खड़ी होकर
भद्दी गालियाँ बक रही है
और किसी की हिम्मत नहीं होती
कि उसका प्रतिवाद करें।''[12]

साठोत्तरी कवि जनवादी मूल्यों का पक्षधर है। वह मानव को मानवता का पाठ पढ़ाता दिखाई देता है। धूमिल जी मोचीराम के माध्यम से यह संदेष देते दिखाई दे रहे हैं क्योंकि भारतीय समाज मानवीय चेतना एवं चरित्र से नगण्य हो गया है। साठोत्तर कवि अपनी इसी सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति सजग है तो है ही वह सामाजिक परिवर्तन का आगाज भी करता है तथा नवीन समाज की स्थापना के लिए अपनी प्रतिबद्धता को भी अपनी रचना में सूत्रबद्ध रूप में पिरोता है। इसी संकल्पना को आधार मानकर साठोत्तरी कवि भय रहित समाज का सपना साकार करता दिखाई देता है–

''जब आसमान का भय नहीं होगा
और बच्चे एक दिन किलकारी मारते हुए दौडेंगे
घरों के दरवाजे अपने आप खुलने लग जायेंगे।''[13]

इस प्रकार धूमिल की कविता का अगला चरण कुमार विकल का काव्य साहित्य है जिसमें कवि जनता के प्रति संकल्पबद्धता को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। 'दुख के दिनों' नामक कविता में कुमार विकल सत्य का उद्घाटन करते हैं–

''दुखी दिनों में आदमी
दिन की रोषनी में रोने के लिए अंधेरा ढूंढता है
और चालीस की उम्र में भी
माँ की गोद जैसी
कोई सुरक्षित जगह खोजता है।''[14]

चन्द्रकान्त देवताले साठोत्तर कविता के सजग प्रहरी हैं। इनकी काव्य चेतना युगीन यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्त करती है। केवल यही नहीं इनका काव्य–कविता के इतिहास एवं इतिहास से कविता को परखने और पहचानने का सार्थक प्रयास है। इनकी काव्य चेतना सामाजिक यथार्थ की भाव भूमि पर आधारित तो है साथ ही एक निष्चित प्रयोजन को लेकर भी चलती है, साथ ही युगीन संदर्भो की संवाहिका भी है। कवि अपने विवके और संवेदना के माध्यम से युगीन सत्य की अभिव्यक्ति करता हुआ कहता है और स्वयं को कविता का अहसानमंद बताता है–
जबड़े जो आदमी के मांस में
गड़ा देते हैं दाँत

यदि ऊन पर चोट करती है कविता
यहां यदि भूख का पहचानने में
समय की आंखे बनती है कविता
तो मैं इस आँख का अहसानंद हूँ।''[15]

देवताले जी की कविता सामाजिक दायित्व बोध की कविता है। जिसमें जीवन सत्य की अभिव्यक्ति तो हैं ही साथ ही इसमें मानवीय द्वन्द्व, कुण्ठा, चिन्ता, तनाव और अवसाद आदि समसामयिक दषाओं को भी पिरोया गया है। वे पूंजीवादी व्यवस्था का भी पुरजोर विरोध करते हैं और सर्वहारा वर्ग को ललकारते हैं

''उठों और अपनी हड्डियों को बजाना शुरू कर दो
भूखण्ड तपकर भट्टी बन रहा है
तनकर सीधे खड़े हो जाओ
और कहीं नहीं
बहुत हो चुका अब और नहीं एकदम नहीं।''[16]

मुक्तिबोध साठोत्तर कविता के हीरक हस्ताक्षर हैं। वे सजग, संवेदना सम्पन्नता वं सृजनषीलता के धनी हैं। इनका काव्य भावबोध और यथार्थबोध का अनूठा संगम है।'' मानवीय आत्मपीड़न और संत्रास की अभिव्यक्ति जैसी उनके द्वारा संभव हुई है, हिन्दी कविता के क्षेत्र में किसी ओर कवि में नहीं पायी जाती। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है, संग्रह की प्रत्येक कविता जलती हुई आग का धधकता भण्डार है, जिसमें उस आग को पैदा करने वाली चेतना x x x यह धधकती हुई आग आधुनिक चेतना सम्पन्न पाठक के मानस की आग बन जाती है।''[17] इस प्रकार इनके काव्य में जीवन–मूल्यों के प्रति छटपटाहट साफ स्पष्ट रूप में देखी जा सकती हैं।

'गीत' कविता में मुक्तिबोध साधारण जन को अस्मिता और अस्तित्व की पहचान करवाता है एवं जनसाधारण की आर्थिक दषा का चित्रण करके शोषणकर्ता पूंजीपति वर्ग के प्रति आक्रोष जगाता है। यथा–

''रामू जानता है कि पूँजीवादी शक्तियाँ
जन–जन की छाती पर बैठकर
विद्रोहिणी बुद्धि की त्रिकालदर्षी आंखों को काटकर निकाल देना चाहती है।''[18]

इस प्रकार मुक्तिबोध का अनुभव उन्हें चिन्तन की ओर उन्मुख करता है,उनका यही अनुभव आत्म संघर्ष को जन्म देता है। कवि सदैव विष्लेषणोंमुख रहता है, वह अपनी पहचान के साथ–साथ सम्पूर्ण समाज की पहचान करवाना चाहता है। उनका यह प्रकार आत्ममुक्ति से होता हुआ मानवमुक्ति तक पहुंचता है। इस प्रक्रिया के पीछे एक तरफ जहाँ समाज कल्याण की भावना निहित है वहीं दूसरी तरफ उसमें सामाजिक चेतना एवं वैयक्तिक मूल्य समाहित हैं। इसी सत्य को अभिव्यक्त करते हुए मुक्तिबोध कहते हैं कि –

लोगों
एक जमाने में जो मेरे ही थे
कवि थे, चिन्तक और क्रांतिकारी थे
क्या हो गया तुम्हें अब
प्रतिदिन कर उपलब्ध सत्य
अब खो देते अगले क्षण ही।''[19]

इस प्रकार 'रहूँगा मैं ईमानदार' नामक कविता में कवि अपनी रचनाधर्मिता के प्रति ईमानदारी की बात दोहराता है, जो सामाजिक चेतना का ही प्रतिफल है। 'चुप रहो मुझे सब कहने दो' कविता में अर्थलिप्सा में जुटे धनाढ़य लोगों पर व्यंग्य करते हुए दिखाई देते हैं।

इसी क्रम में केदारनाथ सिंह की कवितायें अपने कलेवर में मानवीय सरोकारों को समेटे हुए हैं। केवल यही नहीं इन्होंने सामाजिक आर्थिक विसंगतियों और विषमताओं का यथार्थ चित्रण किया है।'मांझी का पुल' नामक कविता मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना में गहन–गूढ़ संबंध रखती है। जो गहरी निद्रा मग्न होने पर भी लोगों में चेतना भरती है। यथा–

''मगर पुल क्या होता है ?
आदमी को अपनी तरफ क्यों खींचता है पुल ?
ऐसा क्यों होता है कि रात की आखिरी गाड़ी
जब मांझी के पुल की पटरियों पर चढ़ती है
तो अपनी गहरी नींद में भी
मेरी बस्ती का हर आदमी हिलने लगता है। ?[20]

केदारनाथ सिंह की कविता शोषितों–पीड़ितों और जनसाधारण के प्रति गहन संवेदना रखती है इसलिए उनमें लोगों के आत्मीयता का भाव देखने को मिलता है। कवि अन्याय एवं शोषण का चित्रण करके उच्च वर्गीय मानसिकता को भी उजागर करता है ताकि जनमानस में चेतना लाई जा सके। कवि कहता है–

''क्या मैं समझ पाऊँगा
बैलगाड़ी और बाजार का
धूल भरा रिष्ता।''[21]

इस प्रकार केदारनाथ सिंह जी अपने काव्य में एक तरफ जहाँ संघर्ष करते दिखाई देते हैं। वहीं उसमें सामाजिक सरोकार भी निहित होते हैं। जो इनके काव्य में शालीनता, धैर्य एवं संयम को दर्षाता है। जो इनकी सामाजिक आस्था और विष्वास को दर्षाता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण रखने वाले केदारनाथ सिंह जी समाज के कर्णधारों से प्रष्न करते दिखाई देते हैं। वे अत्याचार, अन्याय और शोषण का विरोध करते हैं। समाज के ठेकेदारों से वे पूछते हैं

''वे क्यों चुप हैं जिनको आती है भाषा
वह क्या है जो दिखता है धुआँ–धुँआ सा
वह क्या है हरा–हरा–सा जिसके आगे
हैं उलझ गए जीने के सारे धागे।''[22]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि साठोत्तरी काव्य मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक चेतना का काव्य है। इन कवियों ने युगीन समस्याओं को अपना वर्ण्य विषय बनाकर समाज में चेतना लाने का सार्थक प्रयास किया है। साठोत्तर कविता सामाजिक समरसता, मानव–मुक्ति की भावभूमि पर खड़ी है जो पूंजीपति वर्ग द्वारा किये जाने वाले शोषण का विरोध कर जनमानस को जगाने का कार्य करती है ताकि शोषण के बन्धन से मुक्ति पायी जा सके। केवल यहीं नहीं इस भौतिकवादी प्रवृत्ति ने मानव को अपना दास बना लिया है। कुण्ठा, संत्रास, भय, घुटन तथा तनाव जैसे ज्वलंत विषयों ने सामाजिक जीवन को जटिल बना दिया है। इस कविता ने मनुष्य की इस जटिलता को दूर कर उसके जीवन–स्तर को उच्च भाव भूमि की ओर अग्रसर करने का सार्थक प्रयास किया है तथा जीवन–मूल्यों की प्रति स्थापना की है ताकि पारिवारिक संबंधों एवं सामाजिक विघटन को बचाया जा सके। इस प्रकार साठोत्तर कविता सामाजिक प्रतिबद्धता की कविता है, अपनी इस संकल्पना का इन कवियों ने सत्य निष्ठा से निर्वहन किया है।

संदर्भ सूचि

1. सम्पा. रामप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विष्व कोष (चतुर्थ खण्ड) पृ. 282
2. डॉ. जे.एन. सिन्हा, मनोविज्ञान, पृ. 49
3. जयनाथ नलिन, साहित्य का आधार दर्षन, पृ. 01
4. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, पृ. 39
5. सुदामा पाण्डेय धूमिल, संसद से सड़क तक पृ. 12
6. अषोक वाजपेयी, कहीं नहीं, वहीं, पृ. 42
7. विनोदास, पंचसितारा होटल (वसुधा का समकालीन कवितांक) पृ.20
8. वही, वही,
9. रघुवीर सहाय, सीढ़ियों पर धूप, पृ. 52
10. लीलाधर जगूडी, रात अब भी मौजूद है, पृ. 15
11. कुमारेन्द्र पारसनाथ, इतिहास का संवाद, पृ. 34
12. वहीं, वहीं, पृ. 64

13. लेखन (प्रवेषांक, अक्टूबर, 1979), पृ3
14. कुमार विकल, एक छोटी सी लडाई, पृ24
15. चन्द्र कांत देवताले, भूखण्ड तप रहा है, पृ. 44
16. वही, 82
17. श्यामसुंदर मिश्र, अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य, पृ. 168
18. मुक्तिबोध, भूरी भूरी खाक धूल, पृ 204
19. वही, वही, पृ. 61–64
20. केदारनाथ सिंह, मांझी का पुल, पृ. 93
21. वही, कुछ सवाल अपने, पृ.0 53
22. ही, शहर, पृ. 36